पथर पूज़ा कनि, देवु न ड्रिसनि देहि में,
पंडितु ज़ाणी पाण खे, करिमनि मंझि ब्रह्मनि,
साखां संतनि जूं बुधी, मरमु न रखनि मनि,
से कीअं रंगि रचनि, सामी सुपेरियुनि जे.

सामान्यजनों की वृत्ति पर हलका-सा व्यंग्य करते हुए सामी जी कहते हैं, ''संसार के लोग पत्थर को भगवान मान कर उसकी पूजा करते हैं। अर्थात् वे पत्थर पूजते हैं, परंतु अपने शरीर में स्थित भगवान को नहीं देखते। कुछ लोग स्वयं को विद्वान या पंडित मानकर कर्मों में बँध कर कर्मकांड करते रहते हैं। किन्तु ऐसे अनेक लोग संतों के साक्षात् वचन/उपदेश सुन कर भी अपने अंदर विवेक धारण नहीं करते। भला ऐसे अज्ञानी जीव परमेश्वर के प्रेम के रंग में कैसे रंग सकेंगे ?

अज्ञान का अर्थ है ज्ञान का अभाव, अबोधता या नासमझी। यह अर्थ व्यावहारिक जगत से संबंधित है। अध्यात्म की दृष्टि से आत्मा को गुण और गुण-कार्य से अलग न जानने का अविवेक ही अज्ञान है। दूसरे शब्दों में आत्मज्ञान को ज्ञान कहा जाता है और आत्मज्ञान के अभाव को 'अज्ञान' कहा जाता है। संसार में ऐसे अज्ञानी लोग बहुत मिलेंगे, जो आत्मज्ञान से वंचित है। ऐसे अज्ञानी जीवों ने अपने ब्रह्म-स्वरूप (अहं ब्रह्मास्मि) को भुला दिया होता है। अपने ही हृदय में परमात्मा को देख सकने की क्षमता उनमें नहीं होती। प्रियतम परमात्मा भीतर होते हुए भी उसे बाहर ढूँढने का प्रयत्न किया जाता है। ये लोग पत्थर को ही भगवान मानकर उनकी पूजा करते हैं। मंदिर आदि स्थानों पर प्रभु को पूजने जाते रहते हैं।

ऐसे अज्ञानी जीवों का वर्णन करते हुए महाकवि सामीजी कहते हैं कि वे स्वयं को ज्ञानी पंडित मानकर नाना प्रकार के कर्मकांडों के बंधन में स्वयं को बाँध लेते हैं। वे प्रभु की प्रेममय भक्ति की अपेक्षा बाह्य कर्मकांड को ही अधिक महत्व देते हैं। बाह्याडंबर के प्रेमी ऐसे लोग साधु-संतों के उपदेश सुनकर भी उनका रहस्य या मर्म समझ नहीं पाते। ऐसे लोग प्रभु के प्रेम में कैसे रंग सकेंगे ? परमेश्वर के दर्शन कैसे कर सकेंगे ? ऐसे अज्ञानी जीवों के संबंध में संत कबीर कहते हैं,

माला, तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, चले दूनी के साथ।।

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घट मांहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढन जाहिं।।

■